



## International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2014; 1(1): 48-50

© 2014 IJSR

[www.anantaajournal.com](http://www.anantaajournal.com)

Received: 03-09-2014

Accepted: 13-10-2014

डॉ. विवेक निराला

रीडर, हिन्दी विभाग, भवन्स मेहता  
महाविद्यालय, भरवारी कौशांबी, उत्तर  
प्रदेश, भारत

### समकालीनता की अवधारणा और हिन्दी साहित्य

डॉ. विवेक निराला

प्रस्तावना

समकालीनता का प्रश्न निरन्तर उलझन भरा होता है— कम से कम एक रचनाकार के लिए तो अवश्य मुश्किलें खड़ी करता है। समकालीनता के साथ समय अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है। जबकि समय सतत प्रवहमान होता है, तो क्या एक रचनाकार उस समय से बँधकर उसके साथ घिसटते जाने के लिए ही अभिशप्त होता है? क्या प्रतिक्षण बीतते समय के साथ किसी रचनाकार की रचना बासी और पुरानी होती जाती है? क्या समकालीन रचना का भविष्य से कोई सरोकार नहीं होता? क्या इसी के साथ 'अतीत और व्यतीत' के प्रासंगिक होने का प्रश्न नहीं खड़ा होता? क्या समकालीनता शाश्वत का निषेध है? इस समकालीनता से उबर कर कोई रचना कैसे कालजयी बनती है? आदि प्रश्न लगातार परेशान करते हैं।

निराला ने लिखा था— 'देश क शर बिंधकर'।<sup>1</sup> यह तो तय है कि एक रचनाकार देश—काल के शर से विद्ध होता है, जिसका एक रूपक है क्रॉच युग्म का शर से बिंधना। क्रॉच युग्म के साथ आदि कवि भी शर से विद्ध था तभी प्रथम श्लोक की रचना हुई थी। लेकिन, मुझे लगता है कि विद्ध और बुद्ध में फर्क करना होगा। 'देश—काल विद्ध' या 'देश—काल बद्ध'। इस समकालीनता के साथ नत्थी होकर संचरणशील और 'तत्काल' में आरक्षण का अपना खतरा होता है। फिर इसी के साथ एक और प्रश्न हमारे समक्ष खड़ा होता है कि बाल्मीकि का काव्य, टॉल्सटॉय के उपन्यास और पिकासो के चित्र हमें महत्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी कैसे और क्यों लगते हैं?

निर्मल वर्मा का कथन है कि— "प्रासंगिक कलाकृति वह नहीं होती है, जिसमें हर समय और स्थान में जीवित लोगों के लिए शाश्वत उत्तर या सत्य होते हैं, बल्कि वह जो हर युग में बने—बनाये सत्यों और उत्तरों के पैटर्न को बिगाड़ देती हैं, भंग कर देती हैं, हर विश्वास को शंकालु बना देती हैं ताकि हम एक बार अपने समय के द्वन्द्वों शंकाओं और पीड़ाओं का नया अर्थ खोज सकें।"<sup>2</sup> तो क्या एक रचना का प्रासंगिक होना उसके समकालीन होने से ज्यादा बड़ी चीज नहीं है?

समकालीनता और हिन्दी कविता पर विचार करते हुए हिन्दी के दो कवियों के उद्धरणों को देख लेना समीचीन होगा। ये दो कवि हैं— अवधेश कुमार और धूमिल। अवधेश कुमार की एक कविता है और धूमिल की डायरी का एक पृष्ठ। सबसे पहले अवधेश कुमार की समकालीनता पर लिखी हुई कविता देखें—

“इस संसार में  
समय और आदमी ही  
निचुड़ कर बचे; और रह सकते थे  
समकालीन की सुरक्षा के लिए।  
समकालीनता की सुरक्षा के लिए आदमी लड़ता था समय से  
और निचोड़ता था संसार को।”<sup>3</sup>

एक दूसरा उद्धरण धूमिल का डायरी के 1 मार्च 1969 के पृष्ठ से है— "समकालीनता—एक कालीनता। अपने यहाँ समकालीनता और आधुनिकता का सवाल उठना न तो समसामयिक है और न आधुनिक। क्योंकि यहाँ समकालीनता और आधुनिकता सामाजिक स्तर पर सामूहिक जीवन के एक ही बिन्दु पर एक ही साथ और एक ही समय में अंकित होती है। उनके लिए अलग—अलग काल या व्यक्ति चुन पाना संभव नहीं हो सकता है।"<sup>4</sup>

समकालीनता पर भिन्न—भिन्न दृष्टियों से विचार होता रहा है और अभी भी हो रहा है। सामान्य तौर पर सन् साठ के बाद आज तक की कविता को 'समकालीन कविता' के कालखण्ड में बाँधा जाता है।

Corresponding Author:

डॉ. विवेक निराला

रीडर, हिन्दी विभाग, भवन्स मेहता  
महाविद्यालय, भरवारी कौशांबी, उत्तर  
प्रदेश, भारत

इस अवधि में काव्य-भाषा, काव्य गठन और काव्य प्रकृति में तमाम परिवर्तन हुए और आज की हिन्दी कविता तक इन परिवर्तनों को साफ देखा भी जा सकता है, किन्तु बहुत लम्बे समय से हिन्दी कविता में 'नयी कविता' की तरह बाकायदा काव्यान्दोलन नहीं खड़ा हुआ अथवा नहीं परिभाषित किया गया। स्वयं कवियों की ओर से भी ऐसी कोई पहल न होने के कारण 'समकालीन कविता' का कालखण्ड फैलता ही चला जा रहा है। अपनी पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा से निरन्तर अपने को समृद्ध करती हुई समकालीन कविता मेरी दृष्टि में वही है जो अपने समय-सत्ता को चुनौती दे सकती हो।

हिन्दी कविता के इतिहास में झॉके तो पुराने बड़े कवि-कबीर और तुलसी अपने भिन्न संस्कारों और जीवन-विवेक के बावजूद अपने युग की प्रभुत्व शक्ति को चुनौती देते हैं। कबीर छः सौ साल बाद भी इसीलिए हमें समकालीन और आधुनिक लगते हैं। अकबर के स्वर्णकाल को विनय-पत्रिका के द्वारा चुनौती देते हैं तुलसीदास। इसी श्रृंखला में आगे के कवि क्रमशः निराला और मुक्तिबोध हैं। निराला शायद पहले कवि हैं जो कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति के साथ जोड़ कर देखने का एक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। निराला के बाद लगभग उन्हीं की तरह जीवन और रचना के स्तर पर चुनौती देते हैं मुक्तिबोध, जैसा कि सोल्जेनित्सिन का मशहूर कथन है कि किसी भी देश में एक बड़े लेखक की उपस्थिति उस देश में समानान्तर सत्ता की तरह होती है। निराला और मुक्तिबोध ने अपनी उपस्थिति को सिद्ध किया है।

पूँजी, टेक्नॉलाजी और बाजार हमारे समय में-हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी में बुरी तरह दाखिल हैं। भारतीय समाज में पूँजी के आगमन की पहचान निराला की पंक्तियों- "भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है। देश को मिल जाय तो पूँजी तुम्हारी मिल में है"<sup>5</sup> में मिलती है। तुम्हारी पूँजी पूरे देश को मिलनी चाहिए- यह आकांक्षा। फिर पूँजीवादी मूल्यों का विरोधी स्वर मुक्तिबोध में तीखेपन के साथ अभिव्यक्त होता है, जो आज पहले से अधिक समकालीन है। 'अंधेरे में' शीर्षक कविता में 'कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी'<sup>6</sup> की बार-बार आवृत्ति पूँजीवादी व्यवस्था के दमनतंत्र की ओर ही संकेत करती है।

इसके बाद राजकमल चौधरी और धूमिल आते हैं। संसदीय जनतंत्र और व्यवस्था के टकराव से ही इन कवियों की कविता को ताकत मिलती है। व्यवस्था को एकदम नकार कर राजकमल चौधरी अराजकता तक पहुंचते हैं तो धूमिल भारतीय जनता के मोहभंग और जनतंत्र से असन्तोष की कलात्मक अभिव्यक्ति करते हैं। 1966 में 'आलोचना' के एक अंक में केंदार नाथ सिंह की कविता 'चुनाव की पूर्वसंध्या' तथा धूमिल की कविता 'बीस साल बाद' एक साथ प्रकाशित होती है। 1967 में रघुवीर सहाय का कविता संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' प्रकाशित होता है। ये बहुत महत्वपूर्ण वर्ष हैं। इन वर्षों में जनता की सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा दो स्तरों पर व्यक्त होती है- पहला, कांग्रेस की पराजय तथा कई राज्यों की संविद सरकारों का गठन और दूसरा, नक्सलवादी आन्दोलन।

नक्सलवादी आन्दोलन ने हिन्दी ही नहीं, वरन् समूची भारतीय कविता को प्रभावित किया। गोरख पाण्डेय लिखते हैं- "हजार साल पुराना है उनका गुस्सा/हजार साल पुरानी है उनकी नफरत/मैं तो सिर्फ/उनके बिखरे हुए शब्दों को/लय और तुक के साथ/लौटा रहा हूँ/मगर तुम्हें डर है कि/आग भड़का रहा हूँ।"<sup>7</sup>

कल और साहित्य की सामाजिक भूमिका को चुनौती के तौर पर स्वीकार करके समकालीन कवियों ने अपनी कविता से जनचेतना को धारदार बनाने की ईमानदार कोशिशें की हैं। पूँजीवादी समाज में जनसाधारण से कटी कला और संस्कृति के बिकाऊ स्वरूप को पहचानते हुए समकालीन कवि लोक संस्कृति का अजस्त्र धारा से अपने को जोड़ता है। पूँजीवाद के विशाल तंत्र की साजिशों, संरचनाओं एवं जटिलताओं के रहस्य को पहचान कर कवि इस

तंत्र की गिरफ्त में फँसे आदमी को निकालने की कोशिशें करता है इसके उलट पूँजीवादी वर्ग हर तरह से अपने मूल्यों, विचारों और विश्वासों को सार्वजनिक बनाने के सारे प्रयास करता है यह वर्ग तरह तरह से पूँजी, वस्तु और उपभोग के प्रति लालच का भाव पैदा करता है। वह मायावी संसार की रचना करता है जिसमें सब मगन हो डूबें-उतरायें और उसके सकल स्वार्थ सिद्ध होते रहें। ऐसे खतरनाक समय में आलोक धन्वा की कविता की पंक्तियाँ याद आती हैं- "यह कविता नहीं है/यह गोली दागने की समझ है/जो तमाम कलम चलाने वालों को/तमाम हल चलाने वालों से मिल रही है।"<sup>8</sup> कवि का अटूट विश्वास है कि जनता सिर्फ 'दूसरों की ठण्ड के लिए पीठ पर ऊन की फसल ढो रही भेड़' नहीं है। सदियों के शोषण और दमन के अनुभव ने ही उसे हथियार उठाने को प्रेरित किया था। यहाँ ध्यान देने की बात है कि समझदारी की यह प्रक्रिया इकहरी नहीं, बल्कि दोहरे स्तर ही है। कभी कवि समझाता है तो कभी जनता समझाती हैं। अपने समय की वास्तविकताओं का भोक्ता एवं साक्षी होने के कारण किसी भी सच्चे कवि की कविता अपने समय का सच होती है। जो रचना अपने समय का सच नहीं होती वह किसी समय का सच नहीं होती। मगर किसी रचना की सार्थकता अपने युग का प्रतिबिम्ब होने भर में नहीं है, वह अपने समय को आगे भी ले जाती है और उसे बदलने की कोशिश भी करती है। अपने समय की छवि को पकड़ना और उस रास्ते ही अपने समय के पार भी जाना निश्चय ही सृजन-कर्म की सबसे कठिन परीक्षा है और जो रचनाकार इस परीक्षा में सफल होता है वही रह जाता है, शेष विस्मृति के गर्त में चले जाते हैं। 'पुराकवीनां गणना प्रसंगे' ऐसे ही कवियों की गणना की जाती है और ऐसे ही कवि समकालीनता से कालजयी तक की यात्रा पूरी करते हैं।

हर सच्चे कवि की अपने तरीके से एक प्रतिबद्धता होती है। इटैलियन कवि इयुजेनियो मोंताले कहता है- "कविता का इतिहास ऐसी महान रचनाओं का इतिहास भी है जिन्होंने किसी भी किस्म की निरंकुशता को बर्दाश्त नहीं किया है। कोई कविता अपने समय में प्रचलित प्रतिबद्धता के अर्थ को पूरा करे या न करे पर वह अपने समय का प्रत्युत्तर जरूर होती है।"<sup>9</sup>

पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, बाजारवाद और धनतंत्र पर टिकी समकालीन राजनीति मनुष्यता को ही लगातार विभाजित किये जा रही है। यह ऐसी राजनीति है जो दंगों और सांस्कृतिक दुर्घटनाओं पर भी निर्भर करती है। केवल धार्मिक उन्माद से दो समुदायों के बीच दूरियाँ नहीं बढ़ती, बल्कि 'महाजनी सभ्यता' का पूरा तंत्र हमें साम्प्रदायिकता की त्रासदी को झेलने के लिए अभिशप्त करता है। 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद विध्वंस और कुछ वर्षों पूर्व गोधरा में जो कुछ हुआ उसमें सुल्तान अहमद की कविता- 'दीवार के इधर उधर' तथा राजेश जोशी की लम्बी कविता- 'सलीम, मैं और उनसठ का साल' कई महत्वपूर्ण सवाल खड़े करती है। राजेश जोशी लीक से हटकर दंगों की राजनीति की पड़ताल करते हैं- "बच्चे मार डाले गये/शब्द मार डाले गये/कि सर्राफा बच गया/झगन लाल सेठ के मकान पर खरोंच भी नहीं आयी/फखरु भाई का पेट्रोल पम्प भी नहीं जला/कि मोचीपुरे की पट्टी साफ हो गयी।" हमारी समकालीनता में युद्ध, आतंक नफरत, गैर बराबरी, भुखमरी, दंगा, साम्प्रदायिकता, दमन-उत्पीड़न, झूठ, अन्याय, पाशविकता और विध्वंस आदि सभी कुछ शामिल हैं। इक्कीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों में हिन्दी कविता तमाम हादसों को घटित होते देख हतप्रभ-सी है। सारा कुछ बेहद तात्कालिक है। एक संवेदनशील, बहुत ही आक्रामक और नियंत्रणमूलक ताकत है और उस ताकत के लिए कहीं भी, कभी भी और किसी भी जगह कब्जा संभव है। इस सबके खिलाफ आवाजें भी पूरी दुनिया के पैमाने पर उठ रही हैं। वैश्विक स्तर से लेकर स्थानीय स्तर पर एक किसी भी वर्चस्ववाद, उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध हिन्दी कविता अपना प्रतिरोध दर्ज करा रही है। बहुलता सत्ता के आतंक और उसके दमन के तरीकों में भी है और उसके प्रतिरोध में भी।

समकालीनता कैसे बनती है— यह भी देखना चाहिए। निराला की कविता पंक्ति— “देखा मुझे उस दृष्टि से/ज्यों मार खा रोयी नहीं।”<sup>10</sup> से लेकर गोरख पाण्डेय की कविता पंक्ति—“ये आँखें हैं तुम्हारी/तकलीफ का उमड़ता हुआ समुन्दर/इस दुनिया को/जितनी जल्दी हो/बदल देना चाहिए।”<sup>11</sup> या निराला की ‘देवी’ कहानी की पगली, मुक्तिबोध के यहाँ पागल और राजेश जोशी की कविता—‘मारे जाएंगे में’ “जो इस पागलपन में/ शामिल नहीं होंगे/मारे जाएंगे” उपरोक्त उद्धरणों में आँखों में सिमटी करुणा का विस्तार तथा पागलपन में आ रहे बदलाव को देखें। निराला और गोरख समकालीन लगते हैं, लेकिन निराला से राजेश जोशी तक भारतीय समाज में आये पागलपन को आगे की चीज ही स्वीकार करना होगा। गोरख पाण्डेय आत्महत्या कर रहे हैं, छात्र—नौजवान आत्महत्या कर रहे हैं; विदर्भ और बुन्देलखण्ड के किसान आत्महत्या कर रहे हैं ये आत्महत्याएँ भी समकालीन हैं तथा रघुवीर सहाय का कविता संग्रह— ‘आत्महत्या के विरुद्ध’ भी। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रेम विवाहों पर पंचायतों ने जिस तरह सजा सुनायी, जिस तरह युगलों को काटा गया है, फाँसी पर लटकाया गया, फूँक डाला गया उसमें बद्रीनारायण की कविता ‘प्रेमपत्र क्यों याद आती है? बद्रीनारायण की कविता भी उतनी ही समकालीन है जितने प्रेम आख्यान क्लैसिकल।

हमारी समकालीनता में स्त्री और दलित भी हैं। निर्मला पुतुल की कविताओं से पहली बार आदिवासी सच हमारे सामने आता है। आदिवासियों के लिए तमाम सरकारी योजनाएँ तथा उनकी निरर्थकता स्पष्ट होती है। पहली बार एक आदिवासी कवयित्री बोलती है और जब वह बोलती है तो ‘नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द।’ तमाम कवयित्रियों अपने यथार्थ को प्रस्तुत कर रही हैं, किन्तु हमारी समकालीनता में ‘कमला दासी की कविताएँ’ भी हैं और यह सवाल भी कि आखिर कब तक कमला दासी को एक लिखवैये की जरूरत पड़ती रहेगी। अपने संस्कारों के कारण सवर्ण रचनाकार दलित जीवन के भोक्ता नहीं हैं। वर्ण और वर्ग संघर्ष में भी फाँक है। इसका मतलब है कि कहीं न कहीं ऐतिहासिक गड़बड़ी है। मगर क्या दलित विमर्श में भी धर्मवीर जैसे लोग नहीं हैं, इसी समकालीनता के भीतर वो भी तो हैं।

रूसी क्रान्ति ने विश्व के तमाम शोषित और उत्पीड़ित जन में मानवता के सुन्दर भविष्य को रचने का स्वप्न जगाया था। सोवियत संघ के विघटन के बाद समाजवादी—साम्यवादी स्तब्ध रह गये वहीं साम्राज्यवादियों को अपने आक्रमण और तेज करने का अवसर मिला। ‘इतिहास का अन्त’, ‘विचारधारा का अन्त’, और ‘कविता का अन्त’ जैसी घोषणाएँ इसीलिए संभव हो सकीं। सारी दुनिया में एक अजीब तरह के असमंजस की स्थिति बनी। परिणाम यह हुआ कि विश्व पूँजीवाद प्रभुत्व की स्थिति में आ गया। मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था ने पाँव पसार लिये। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण हमारे समय का कटु सत्य बन गया। ज्ञान का स्थान सूचना ने ले लिया। सांस्कृतिक—साहित्यिक मूल्य विज्ञापन के धुंधलके में गायब होने को हैं। उत्तर—आधुनिकतावादी विचारधारा भिन्न—भिन्न रूपों में दिग्भ्रमित कर रही है। वर्गीय समाज में इस तरह की कोई भी विचारधारा न वर्गों से परे होती है और न हो सकती है। यह उत्तर आधुनिकता भी अपने साम्राज्यवादी आकाओं की ही सेवा कर रही है।

वस्तुतः आज कवि कर्म कठिन है। अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर बेहद तनाव का माहौल है। समकालीन कवि आज के इस जटिल सामाजिक परिप्रक्ष्य की सच्चाइयों के साथ ही अपने समय में संघर्ष और हस्तक्षेप कर रहा है। समकालीन संकटों को ब्रेख्त के शब्दों में कहें तो—

“हम एक अंधेरे समय में सयाने हुए  
जब भेड़िये राग मल्हार गा रहे थे  
और हत्यारों के सेवक  
साहित्य की दुनिया में  
वामपंथ की भाषा बोल रहे थे।”<sup>12</sup>

ऐसे समय में समकालीन हिन्दी कविता बार—बार इन तमाम संकटों और मनुष्यता विरोधी षड्यन्त्रों से टकराती हुई आगे बढ़ रही है। अपने समय के तमाम षड्यन्त्रों—संकटों के बावजूद, अन्त की घोषणाओं के बावजूद ढेरों कविताओं का लिखा जाना और उनमें ढेरों का पढ़ा जाना आश्वस्त करता है क्योंकि— “कवि का सौभाग्य है पढ़ लिया जाना/जैसे खा लिया जाना/अमरुद का सौभाग्य है।”<sup>13</sup> दरअसल, कवि का समय उसके जीवन काल या कविताओं के रचनाकाल के आधार पर नहीं पहचाना जाता। कविताओं में उस समय के पार एक दूसरा समय भी होता है जो कवि के अपने समय से बार—बार टकराता है। इसी टकराहट से उपजे कवि के समय बोध की पहचान कविता के सजग पाठ की माँ करती है और इसी से किसी कवि की आगे आने वाले समय में प्रासंगिकता भी सिद्ध होती है। शमशेर से शब्द लेकर कहें तो एक कवि की कविता ‘आगत—प्राण’ का संचय भी होती है, सिर्फ ‘विगत’ का स्मरण ही नहीं।

### संदर्भ

1. निराला: तुलसीदास, निराला रचनावली, खण्ड-1, पृष्ठ 306।
2. निर्मल वर्मा: शताब्दी के ढलते वर्षों में, पृष्ठ 151।
3. नया प्रतीक: अंक जनवरी 1978 पृष्ठ सं0 39।
4. नया प्रतीक: अंक अप्रैल 1978 पृष्ठ सं012।
5. निराला: निराला रचनावली, खण्ड2, पृष्ठ 166।
6. मुक्तिबोध: चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृष्ठ सं0 292—93।
7. गोरख पाण्डेय: तुम्हें डर है, लोहा गरम हो गया है, पृष्ठ सं0 73।
8. वाम—3 पृष्ठ सं0 15।
9. उद्भावना, कवितांक: अंक 47—48, पृष्ठ सं0 71।
10. तोड़ती पत्थर, निराला रचनावली, खण्ड—1 पृष्ठ सं0 342।
11. आँखे देखकर: जागते रहो सोने वालों, पृष्ठ सं0 29।
12. उद्भावना: अंक 56, आवरण, पृष्ठ सं0 2।
13. वीरेन डंगवाल: इसी दुनिया में, पृष्ठ सं0 24।